# हरिजन और जैन

जबसे बम्बईकी धारा-सभामें 'हरिजनमन्दिर-प्रवेश' बिल पास हुआ है तबसे गाढ़-निद्रामें मग्न जैन समाजका मानस विशेष रूपसे जाग्रत हो गया है। इस मानसके एक कोनेसे पण्डिताई सेठाई और साधुशाहीने एक साथ मिलकर आवाज़ लगाई है कि हरिजन हिन्दू समाजके अंग हैं, और जैन हिन्दू समाजसे जुदे हैं। इसलिए हिन्दू समाजको लक्ष्य करके बनाया गया 'हरिजनमन्दिर-प्रवेश' बिल जैनसमाजको लागू नहीं हो सकता।

जाग्रत जैनमानसके दूसरे कोनेसे दूसरी आवाज उठी है कि भले ही जैन-समाज हिन्दू समाजका एक भाग हो और इससे जैनसमाज हिन्दू गिनी जाय पर जैनधर्म हिन्दू धर्मसे पृथक् है, और 'हरिजन-मन्दिर-प्रवेश' बिल हिन्दू-धर्ममें सुधार करनेके लिए है, अतः वह जैनधर्मपर लागू नहीं हो सकता। क्योंकि हरिजन हिन्दू धर्मके अनुयायी हैं, जैनधर्मके नहीं। जैन धर्म तो मूलसे ही जुदा है। इन दो विरोधी आवाजोंके सिवाय जाग्रत जैन मानससे कुछ और भी स्वर निकले हैं। कोई कहते हैं कि लम्बे समयसे चली आई जैनपरम्परा और प्रणालीके आधारसे हरिजनोंको जैनमन्दिर-प्रवेशसे रोक रखनेके लिए बिलका निषेध करना चाहिए। कुछ लोग जैन मन्दिरोंको जैन सम्पत्ति और उनपर जैन स्वामित्व मानकर ही बिलका विरोध करते हैं।

दूसरी तरफ उपरिलिखित जुदे-जुदे विरोधी पक्षोंका सख्त प्रतिवाद करनेवाली एक नवयुगीन प्रतिध्वनि भी जोरोंसे उठी है। मैं इन लेखमें इस सब पक्षोंकी सबलता और निर्बलताकी परीक्षा करना चाहता हूँ। पहले पक्षका कहना है कि जैनसमाज हिन्दूसमाजसे जुदा है। यह पक्ष 'हिन्दू' शब्दका अर्थ केवल ब्राह्मण-धर्मानुयायी या वैदिक परम्परानुयायी समझता है, पर यह अर्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतिहास और परम्पराकी दृष्टिसे भ्रान्त है। इतिहास और परम्पराका ठीक ठीक ज्ञान न होनेसे यह पक्ष अपनी मान्यताकी पुष्टिके लिए हिन्दू शब्दकी उक्त संकीर्ण व्याख्या गढ़ लेता है। अतः इस सम्बन्धमें थोड़ा गंभीर विचार करना होगा।

ग्रीक लोग सिन्धुके तटसे यहाँ आये थे। वे भारतके जितने जितने प्रदेशको जानते गये उतने उतने प्रदेशको अपनी भाषामें 'इन्डस' कहते गये। भारतके भीतरी भागोंसे वे ज्यों ज्यों परिचित होते गये त्यों त्यों उनके 'इंडस' शब्दका अर्थ भी विस्तृत होता गया। मुहम्मद पैगम्बरसे पहले भी अरब व्यापारी भारतमें आते थे। कुछ सिन्धु नदीके तट तक आये थे और कुछ समुद्री मार्गसे भारतके किनारे किनारे पश्चिमसे पूर्व तक—जावा सुमात्रासे लेकर चीन तक—यात्रा करते थे। ये अरब व्यापारी भारतके सभी परिचित किनारोंको 'हिन्द' कहते थे। अरबोंको भारतकी बनी हुई तलवार बहुत पसन्द थी और वे उसपर मुग्ध थे। भारतकी सुखसमृद्धि और मनोहर आबोहवाने भी उन्हें बहुत आकृष्ट किया था। इस लिए भारतकी तलवारको वे उसके उत्पत्ति-स्थानके नामसे 'हिन्द' कहते थे। इसके बाद पैगम्बर सा० का जमाना आता है। मुहम्मद बिन कासमने सिन्धमें अपना अड्डा जमाया। फिर महमूद गजनबी तथा अन्य आक्रमणकारी मुसलमान देशमें आगे-आगे बढ़ते गये और अपनी सत्ता जमाते गये। इस जमानेमें मुसलमानोंने भारतके लगभग सभी भागोंका परिचय पा लिया था, इसलिए मुसलिम इतिहास-लेखकोंने भारतको तीन भागोंमें बाँटा—सिन्ध, हिन्द और दक्षिण। हिन्द शब्दसे उन्होंने सिन्धुके आगेके समस्त उत्तर हिन्दुस्थानको पहिचाना। अकबर तथा अन्य मुगल बादशाहोंने राज्य-विस्तारके समय राज-काजकी सुविधाके लिए समस्त भारतको ही 'हिन्द' नामसे व्यवहृत किया। इस तरह हिन्द और हिन्दू शब्दका अर्थ उत्तरोत्तर उसके प्रयोग और व्यवहार करनेवालोंकी जानकारीके अनुसार विस्तृत होता गया और फिर अँग्रेजी शासनमें इसका एकमात्र निर्विवाद अर्थ मान लिया गया—काश्मीरसे कन्याकुमारी और सिन्धुसे आसाम तकका सम्पूर्ण भाग—सारा-देश—हिन्द।

इस तरह हिन्द और हिन्दुस्तानका अर्थ चाहे जितना पुराना हो और चाहे जिस क्रमसे विस्तृत हुआ हो, पर यह प्रश्न तो अब भी खड़ा रहता है कि हिन्दुस्तानमें बसनेवाले सभी लोग हिन्दूसमाजमें शामिल हैं या उसमेंके खास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खास वर्ग ? और वे कौन कौन ? इसके उत्तरके लिए बहुत दूर जानेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि हिन्दुस्तानमें पहलेसे ही अनेक जातियाँ और मानव-समाज आते और बसते रहे हैं। पर सभीने हिन्दूसमाजमें स्थान नहीं पाया। हम जानते हैं कि मुसलमान व्यापारी और शासकके रूपमें इधर आये और बसे, पर वे हिन्दूसमाजसे भिन्न ही रहे। इसी तरह हम यह भी जानते हैं कि मुसलमानोंके आनेके कुछ पहले और उसके बाद भी, विशेष रूपसे 'पारसी' हिन्दुस्तानमें आकर रहे हैं और उन्होंने मुसलमानोंकी तरह हिन्दुस्तानको अपनी मातृभूमि मान लिया है, फिर भी वे हिन्दू समाजसे पृथक् गिने जाते हैं। इसी तरह क्रिश्चियन और गोरी जातियाँ भी हिन्दुस्तानमें हैं, पर वे हिन्दूसमाजका अंग नहीं बन सकी हैं। इस समस्त स्थितिका और हिन्दूसमाजमें गिनी जानेवाली जातियों और वर्गोंके धार्मिक इतिहासका विचार करके स्व० लोकमान्य तिलक जैसे विचारकोंने 'हिन्दू' शब्दकी जो व्याख्या की है, वह पूर्णतया निर्दोष और सत्य है। इस व्याख्याके अनुसार जिनके पुण्य पुरुष और तीर्थस्थान हिन्दुस्तानको अपने देवों और ऋषियोंका जन्मस्थान अर्थात् अपनी तीर्थभूमि मानते हैं, वे सब 'हिन्दू' हैं, और उन सबका समाज 'हिन्दू-समाज' है।

जैनोंके लिए भी ऊपर कही हुई हिन्दूसमाजकी व्याख्या न माननेका कोई कारण नहीं है। जैनोंके सभी पुण्य पुरुष और पुण्य तीर्थ हिन्दुस्तानमें हैं। इसलिए जैन हिन्दूसमाजसे पृथक् नहीं हो सकते। उनको जुदा माननेकी प्रवृत्ति जितनी ऐतिहासिक दृष्टिसे भ्रान्त है उतनी ही अन्य अनेक दृष्टियोंसे भी। इसी भ्रान्त दृष्टिके वश 'हिन्दू' शब्दका केवल 'वैदिक परम्परा' अर्थ करके अज्ञानी और सम्प्रदायान्ध जैनोंको भ्रममें डाला जा रहा है। पर इस पक्षकी निस्सारता अब कुछ शिक्षित लोगोंके ध्यानमें आ गई है, इसलिए उन्होंने एक नया ही मुद्दा खड़ा किया है। उसके अनुसार जैन समाजको हिन्दूसमाजका अंग मानकर भी धर्मकी दृष्टिसे जैनधर्मको हिन्दू धर्मसे भिन्न माना जाता है। अब जरा इसी प्रश्नकी मीमांसा कर ली जाय।

अँग्रेजी शासनके बाद मनुष्य-गणनाकी सुविधाके लिए 'हिन्दू धर्म' शब्द बहुत प्रचलित और रूढ़ हो गया है। हिन्दूसमाजमें शामिल अनेक वर्गोंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा पाले जानेवाले अनेक धर्म हिन्दूधर्मकी छत्रछायामें आ जाते हैं। इस्लाम, जरथुस्त्र, ईसाई और यहूदी आदिको छोड़कर, जिनके कि मूल धर्मपुरुष और मूल तीर्थस्थान भारतसे बाहर हैं, बाकीके सभी धर्म-पन्थ 'हिन्दूधर्म' में शामिल हैं। बौद्धधर्म भी जिसका कि मुख्य और बहुभाग हिन्दुस्तानके बाहर है, हिन्दूधर्मका ही एक भाग है, भले ही उसके अनुयायी अनेक दूरवर्ती देशोंमें फैले हुए हैं। धर्मकी दृष्टिसे तो बौद्धधर्म हिन्दूधर्मकी ही एक शाखा है।

वास्तविक दृष्टिसे सारा जैनसमाज हिन्दुस्तानमें ही पहलेसे बसता चला आया है और आज भी बस रहा है। इसलिए जैन जिस तरह समाजकी दृष्टिसे हिन्दूसमाजकी एक शाखा हैं, उसी तरह धर्मकी दृष्टिसे भी हिन्दूधर्मका एक मुख्य और प्राचीन भाग है। जो लोग 'हिन्दूधर्म' शब्दसे केवल 'वैदिक धर्म' समझते हैं वे न तो जैनसमाज और जैनधर्मका इतिहास जानते हैं और न हिन्दूसमाज और हिन्दूधर्मका। अपने कामचलाऊ छिछले ज्ञानके बलपर जैन-धर्मको हिन्दूधर्मसे जुदा गिननेका साहस करना स्पष्टतया अपनी हँसी कराना है।

भारतके या विदेशोंके प्रसिद्ध विद्वानोंने जब जब हिन्दूदर्शन या हिन्दूधर्मके सम्बन्धमें लिखा है, तब तब वैदिक, बौद्ध और जैन तत्त्वज्ञान और धर्मकी सभी परम्पराओंको लेकर विचार किया है। जिन्होंने हिन्दू साहित्यका इतिहास लिखा है उन्होंने भी जैन-साहित्यको हिन्दू साहित्यकी एक शाखाके रूपमें ही स्थान दिया है। सर राधाकृष्णनकी 'इंडियन फिलासफी' डॉ० दासगुप्ता आदिके दर्शन ग्रन्थ, आचार्य आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुवकी 'हिन्दूधर्मकी बालपोथी' और दीवान नर्मदाशंकर मेहताका 'हिन्द तत्त्वज्ञानका इतिहास' आदिमें वैदिक, बौद्ध और जैन इन तीनों ही जीवन्त भारतीय धर्म-परम्पराओंका हिन्दूधर्मके रूपमें वर्णन किया है।

इस तरह जैनधर्म हिन्दूधर्मके अन्तर्गत हो जाता है, फिर भी यह प्रश्न खड़ा ही रह जाता है कि जब हरिजन मूलमें ही जैनधर्मके अनुयायी नहीं हैं और जैनसमाजके अंग भी नहीं है, तब उनके लिए बननेवाला कानून वे हिन्दूसमा-जके जिस भागके अंश हों अथवा हिन्दूधर्मकी जिस शाखाके अनुयायी हों उसी हिन्दूसमाज और हिन्दूधर्मके भागको लागू होना चाहिए न कि समस्त हिन्दू-समाज और समस्त हिन्दूधर्मको। न तो जैन अपने समाजमें हरिजनोंको गिनते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं और न हरिजन ही अपनेको जैनसमाजका अंश मानते हैं। इसी तरह हरिजनोंमें जैनधर्मके एक भी विशिष्ट लक्षणका आचरण नहीं है और न वे जैनधर्म धारण करनेका दावा ही करते हैं। हरिजनोंमें चाहे जितनी जातियाँ हों, पर जो क्रिश्चियन और मुसलमान नहीं हुए हैं वे सभी शंकर, राम, कृष्ण, दुर्गा, काली आदि वैदिक और पौराणिक परम्पराके देवोंको ही मानते, भजते और पूजते हैं। इसी तरह वैदिक या पौराणिक तीर्थों, पर्वतिथियों और व्रत नियमोंको पालते हैं। प्राचीन या अर्वाचीन हरिजन सन्तोंको भी वैदिक और पौराणिक परम्परामें ही स्थान मिला है। इस लिए हरिजनोंको हिन्दूसमाजका अंग और हिन्दू धर्मका अनुयायी मान लेनेपर उनका समावेश हिन्दूसमाजकी वैदिक-पौराणिक परम्परामें ही हो सकता है, जैन परम्परामें तो किसी भी तरह नहीं। इसलिए दूसरे पक्षवालोंको यदि हरिजन-मन्दिर-प्रवेशसे जैन समाजको मुक्त रखना है तो यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि जैनधर्म हिन्दूधर्मसे जुदा है। अधिकसे अधिक इतना ही कहना चाहिए कि हरिजन भी हिन्दू हैं, जैन भी हिन्दू हैं। जैनधर्म हिन्दूधर्मका एक भाग है, फिर भी हरिजन जैन समाजके अंग नहीं हैं और न वे जैनधर्मके अनुयायी हैं। हिन्दू समाज और हिन्दू धर्मको एक शरीर माना जाय और उसके अवान्तर भेदोंको हाथ पैर, अँगूठा या अँगुली जैसा अवयव माना जाय, तो हरिजन हिन्दूधर्मका अनुसरण करनेवाले हिन्दूसमाजके एक बड़े भाग—वैदिक पौराणिक धर्मानुयायी समाज—में ही स्थान पा सकते हैं न कि जैन समाजमें। हरिजन हिन्दू हैं और जैन भी हिन्दू हैं, इससे हरिजन और जैन अभिन्न सिद्ध नहीं हो सकते, जैसे कि ब्राह्मण और राजपूत या राजपूत और मुसलमान। मनुष्य-समाजके ब्राह्मण, राजपूत और मुसलमान सभी अंग हैं, फिर भी वे मनुष्य होकर भी भीतर भीतर बिलकुल भिन्न हैं। इसी तरह हरिजन और जैन हिन्दू होकर भी भीतर ही भीतर समाज और धर्मकी दृष्टिसे बिलकुल जुदे हैं। यदि दूसरे पक्षवाले ऐसा विचार रखते हैं तो वे साधार कहे जा सकते हैं। अतः अब इसी पक्षके ऊपर विचार करना उचित है। हम यहाँ यदि जैनधर्मके असली प्राणको न पहिचानें तो प्रस्तुत विचार अस्पष्ट रह जायगा और चिर कालसे चली आनेवाली भ्रान्तियाँ चालू ही रहेंगी।

प्रत्येक धर्मका एक विशिष्ट ध्येय होता है, जैन धर्मका भी एक विशिष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्येय है और वही जैन धर्मका असली प्राण है। वह ध्येय है—"मानवताके सर्वांगीण विकासमें आनेवाली सभी बाधाओंको हटाकर सार्वत्रिक निरपवाद भूतदयाका आचरण करना, अर्थात् आत्मौपम्यके सिद्धान्तके आधारसे प्राणिमात्रको और खासकर मनुष्यमात्रको ऊँच-नीच, गरीबी-अमीरी या इसी प्रकारके जातिगत भेद-भावके विना सुख सुविधा और विकासका पूर्ण अवसर देना।" इस मूलभूत ध्येयसे जैन धर्मके नीचे लिखे विशिष्ट लक्षण फलित होते हैं—

१–किसी भी देवी देवताके भय या अनुग्रहसे जीनेके अन्ध-विश्वाससे मुक्ति पाना।

२–ऐसी मुक्तिके बाधक शास्त्र या परम्पराओंको प्रमाण माननेसे इंकार करना।

३–ऐसे शास्त्र या परम्पराओंके ऊपर एकाधिपत्य रखनेवाले और उन्हींके आधारसे जगत्में अन्धविश्वासोंकी पुष्टि करनेवाले वर्गको गुरु माननेसे इंकार करना।

४–जो शास्त्र या जो गुरु किसी न किसी प्रकार हिंसाका या धर्मक्षेत्रमें मानव-मानवके बीच असमानताका स्थापन या पोषण करते हों, उनका विरोध करना और साथ ही गुणकी दृष्टिसे सबके लिए धर्मके द्वार खुले रखना।

इनसे तथा इनसे फलित होनेवाले धर्मके दूसरे ऐसे ही लक्षणोंसे जैनधर्मकी आत्मा पहिचानी जा सकती है। इन्हीं लक्षणोंसे जैन आचार-विचारका और उसके प्रतिपादक शास्त्रोंका स्वरूप बना है। जैन भगवान् महावीर या ऐसे ही किसी पुरुषको क्रान्तिकारी सुधारक या पूज्य समझते हैं। उनके सुधारकत्व या पूज्यत्वकी कसौटी पूर्वोक्त जैनधर्मके प्राणोंको अपने जीवनमें उतारनेकी शक्ति और प्रवृत्ति ही है। जिनमें यह शक्ति न हो उन्हें जैन गुरु या पूज्य नहीं मान सकते। और जो इस ध्येयके मानने या मनवानेमें बाधा डालता है, उसके पीछे जैन नहीं चल सकते। इस सम्बन्धमें किसी भी जैनको किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं हो सकती। जैनधर्मका विचार इस दृष्टिसे ही हो सकता है। इसीलिए हम देखते हैं कि जैनधर्मके अनुयायी सदासे धर्मके निमित्त होनेवाली हिंसाका विरोध करते आये हैं और अहिंसाकी प्रतिष्ठामें अपना पूरा-पूरा हिस्सा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बँटाते रहे हैं। इसीलिये जैन अपनेको सर्वोपरि और सर्वश्रेष्ठ माननेवाले ब्राह्मणवर्गको गुरु माननेसे इंकार करते हैं और ऊँच-नीच-भेदके बिना चाहे जिस वर्णके धर्मजिज्ञासुको अपने संघमें स्थान देते हैं। यहाँ तक कि जो समाजमें सबसे नीच समझा जाता है और तिरस्कारका पात्र होता है, उस चाण्डालको भी जैनोंने गुरुपदपर बिठाया है। साथ ही जो उच्चत्वाभिमानी ब्राह्मण जैन श्रमणोंको उनकी क्रान्तिकारी प्रवृत्तिके कारण अदर्शनीय या शूद्र समझते थे, उनको भी समानताके सिद्धान्तको सजीव बनानेके लिए अपने गुरुवर्गमें स्थान दिया हैं।

जैन आचार्योंका यह क्रम रहा है कि वे सदासे अपने ध्येयकी सिद्धिके लिए स्वयं शक्तिभर भाग लेते हैं और आसपासके शक्तिशाली लोगोंकी सत्ताका भी अधिकसे अधिक उपयोग करते हैं। जो कार्य वे स्वयं सरलतासे नहीं कर सकते, उस कार्यकी सिद्धिके लिए अपने अनुयायी राजाओं-मंत्रियों और दूसरे अधिकारियों तथा अन्य समर्थ लोगोंका पूरा-पूरा उपयोग करते हैं। जैनधर्मकी मूल प्रकृति और आचार्य तथा विचारवान् जैनगृहस्थोंकी धार्मिक प्रवृत्ति, इन दोनोंको देखते हुए यह कौन कह सकता है कि यदि हरिजन स्वयं जैन धर्मस्थानोंमें आना चाहते हैं तो उन्हें आनेसे रोका जाय? जो कार्य जैन धर्मगुरुओं और जैन संस्थाओंका था और होना चाहिए था वह उनके अज्ञान या प्रमादके कारण बन्द पड़ा था; उसे यदि कोई दूसरा समझदार चालू कर रहा हो, तो ऐसा कौन समझदार जैन है जो इस कामको अपना ही मानकर उसे बढ़ानेका प्रयत्न नहीं करेगा? और अपनी अब तककी अज्ञानजन्य भूल सुधारनेके बदले यह कार्य करनेवालेको धन्यवाद नहीं देगा? इस तरह यदि हम देखें तो बंबई सरकारने जो कानून बनाया है वह स्पष्ट रूपसे जैनधर्मका ही कार्य है। जैनोंको यही मानकर चलना चाहिए कि 'हरिजन-मन्दिर-प्रवेश' बिल उपस्थित करनेवाले माननीय सदस्य और उसे कानूनका रूप देनेवाली बम्बई सरकार एक तरहसे हेमचन्द्र, कुमारपाल और हीरविजयजीका कार्य कर रही है। इसके बदले अपने मूलभूत ध्येयसे उलटी दिशामें चलना तो अपने धर्मकी हार और सनातन वैदिक परम्पराकी जीत स्वीकार करना है। हरिजन-मन्दिर-प्रवेश बिल चाहे जिस व्यक्तिने उपस्थित किया हो और चाहे जिस सरकारके अधिकारमें हो, पर इसमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजय तो जैनधर्मकी असली आत्माकी ही है। इस विजयसे प्रसन्न होनेके बदले अपनी धर्मच्युति और प्रमादपरिणतिको ही धर्म मानकर एक सत्कार्यका कल्पित दलीलोंसे विरोध करना और चाहे जो हो, जैनत्व तो नहीं है।

जैनी सुदूर प्राचीनकालसे जिस तरह अपने त्यागी-संघमें जाति और लिंगके भेदकी अपेक्षा न करके सबको स्थान देते आये हैं, उसी तरह वे सदासे अपने धर्मस्थानोंमें जन्मसे अजैन व्यक्तियोंको समझाकर, लालच देकर, परिचय बढ़ाकर तथा अन्य रीतियोंसे ले जानेमें गौरव भी मानते आये हैं। कोई भी विदेशी, चाहे पुरुष हो या स्त्री, कोई भी सत्ताधारी या वैभवशाली चाहे पारसी हो या मुसलमान, कोई भी शासक चाहे ठाकुर हो या भील, जो भी सत्ता सम्पत्ति और विद्यामें उच्च समझा जाता है उसे अपने धर्मस्थानोंमें किसी न किसी प्रकारसे ले जानेमें जैन धर्मकी प्रभावना समझते आये हैं। जब ऐसा व्यक्ति स्वयं ही जैनधर्मस्थानोंमें जानेकी इच्छा प्रदर्शित करता है, तब तो जैन गृहस्थों और त्यागियोंकी खुशीका कोई ठिकाना ही नहीं रहता। यह स्थिति अबतक सामान्यरूपसे चली आई है। कोई त्यागी या गृहस्थ यह नहीं सोचता कि मन्दिर और उपाश्रयमें आनेवाला व्यक्ति रामका नाम लेता है या कृष्णका, अहुरमज्द, खुदा या ईसाका? उसके मनमें तो केवल यही होता है कि भले ही वह किसी पन्थका माननेवाला हो, किसीका नाम लेता हो, किसीकी उपासना करता हो, चाहे मांसभक्षी हो या मद्यपायी, यदि वह स्वयं या अन्यकी प्रेरणासे जैनधर्मस्थानोंमें एकाध बार भी आयेगा, तो कुछ न कुछ प्रेरणा और बोध ग्रहण करेगा, कुछ न कुछ सीखेगा। यह उदारता चाहे ज्ञानमूलक हो चाहे निर्बलतामूलक, पर इसका पोषण और उत्तेजन करना हर तरहसे उचित है। हेमचन्द्र जब सिद्धराजके पास गये थे तो क्या वे नहीं जानते थे कि सिद्धराज शैव है? जब हेमचन्द्र सोमनाथ पाटनके शैव मन्दिरमें गये तब क्या वे नहीं जानते थे कि यह शिवमन्दिर है? जब सिद्धराज और कुमारपाल उनके उपाश्रयमें पहले पहल आये तब क्या उन्होंने राम-कृष्णका नामका लेना छोड़ दिया था, केवल अरहंतका नाम रटते थे? जब हीरविजयजी अकबरके दरबारमें गये तब क्या अकबरने या उसके दरबारियोंने खुदा या मुहम्मद पैगम्बरका नाम लेना छोड़ दिया था? अथवा जब अकबर हीरविजयजीके उपाश्रयमें आये तब क्या उन्होंने खुदाका नाम ताकमें रखकर अरहंतके नामका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उच्चारण शुरू कर दिया था ? यह सब कुछ नहीं था। यह सब होते हुए भी जैनी पहलेसे आज तक सत्ताधारी प्रभावशाली और सम्पत्तिशाली प्रत्येक जाति या वर्गके मनुष्यको अपने धर्म-स्थानोंके द्वार खुले रखते थे। तब प्रश्न होता है कि ये लोग फिर आज हरिजन-मन्दिर-प्रवेश बिलका इतना उग्र विरोध क्यों कर रहे हैं ? जो वस्तु इस परम्पराके प्राणोंमें नहीं थी वह हाड़ोंमें कहाँसे आ गई ?

इसका उत्तर जैन-परम्पराकी निर्बलतामें है। गुरु-संस्थामें व्याप्त जाति-समानताका सिद्धान्त जैनोंने मर्यादित अर्थमें लागू किया है, क्योंकि आज भी जैन-गुरुसंस्थामें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अँग्रेज, पारसी आदि कोई भी समान सम्मान्य स्थान पा सकता है। यहाँ मैं 'मर्यादित अर्थमें' इसलिए कह रहा हूँ कि जिस गुरुसंस्थामें किसी समय हरिकेशी और मेतार्य जैसे अस्पृश्योंको पूज्य पद प्राप्त हुआ था उसमें उसके बाद अस्पृश्योंको स्थान मिला हो, ऐसा इतिहास नहीं है। इतना ही नहीं, अस्पृश्योंका उद्धारकर उन्हें स्पृश्य बनाने तथा मनुष्यकी सामान्य भूमिकापर लानेके मूल जैन सिद्धान्तको भी जैन लोग बिलकुल भूल गये है। जैनोंके यहाँ हरिजनोंका अनिवार्य प्रवेश है। केवल गृहस्थोंके घरोंमें ही नहीं, धर्मस्थानोंमें भी, इच्छा या अनिच्छासे, हरिजनोंका प्रवेश अनिवार्य हैं। पर यह प्रवेश स्वार्थप्रेरित है। अपने जीवनको कायम रखने और स्वच्छता तथा आरोग्यके लिए न चाहते हुए भी वे हरिजनोंको अपने घरों तथा धर्मस्थानोंमें बुलाते हैं। जब धर्मस्थानोंकी स्वच्छताके लिए हरिजन आते हैं, तब क्या वे उन देवोंका नाम लेते हैं ? और क्या जैनोंको उस समय इस बातकी परवाह होती है कि वे जिनदेवका नाम ले रहे हैं या नहीं ? उस समय उनकी गरज है, अतः वे कोई दूसरा विचार नहीं करते। पर जब वे ही हरिजन स्वच्छ होकर जैनधर्मस्थानोंमें आना चाहते हैं अथवा उनके मन्दिर-प्रवेशमें बाधक रूढ़ियोंको तोड़नेके लिए कोई कानून बनाया जाता है, तब जैनोंको याद आ जाती है कि यह अरहंतका अनुयायी नहीं है, यह अरहंतका नाम नहीं लेता, यह तो महादेव या मुहम्मदका माननेवाला है। यह है जैनोंकी आजकी धर्मनिष्ठा !

इस प्रश्नको एक दूसरे प्रकारसे सोचिए। कल्पना कीजिए कि अस्पृश्य



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ग क्रमशः ऊँचे ऊँचे शासकपदोंपर पहुँच जाय, जैसे कि क्रिश्चियन हो जानेके बाद वह ऊँचे पदोंपर पहुँचता है, और उसका पहुँचना निश्चित है। इसी तरह शिक्षा या व्यापारद्वारा वह समृद्धिशाली हो उच्चाधिकारी बन जाय जैसे कि आज डॉ० अम्बेडकर आदि हैं, उस समय क्या जैन लोग उनके लिए अपने धर्मस्थानोंमें दूसरे लोगोंकी तरह प्रतिबन्ध लगायेंगे ? और क्या उस समय भी बिलके विरोधकी तरह उनका सीधा विरोध करेंगे ? जो लोग जैन-परम्पराकी वैश्य प्रकृतिको जानते हैं वे निःशंक कह सकते हैं कि जैन उस समय अस्पृश्य वर्गका उतना ही आदर करेंगे जितना कि अतीतकालमें क्रिश्चियन मुसलमान पारसी तथा अन्य विधर्मी उच्च शासकोंका करते आये हैं और अब करते हैं। इस चर्चाका निष्कर्ष यही है कि जैन लोग अपना धर्मसिद्धान्त भूल गये हैं और केवल सत्ता और धनकी प्रतिष्ठामें ही धर्मकी प्रतिष्ठा मानते हैं। अन्यथा यह कहनेका क्या अर्थ है कि 'हरिजन' हिन्दू होकर भी जैन नहीं हैं, अतः हम लोग जैन मन्दिरमें प्रवेश देनेवाले कानूनको नहीं मानना चाहते ? हरिजनोंके सिवाय अन्य सभी अजैन हिन्दुओंको जैन धर्मसंघ और धर्मस्थानोंमें आनेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं है, उलटे उन्हें अपने धर्मस्थानोंमें लानेके लिए विविध प्रयत्न किये जाते हैं। तो फिर हिन्दू समाजके ही एक दूसरे अंगरूप हरिजनोंको अपने धर्मस्थानों तथा अपनी शिक्षणसंस्थाओंमें स्वयं क्यों न बुलाया जाय ? धार्मिक सिद्धान्तकी रक्षा और गौरव इसीमें है। जैनोंको तो कहना चाहिए कि हमें बिल-किल या धारा-बाराकी कोई आवश्यकता नहीं है, हम तो अपने धर्मसिद्धान्तके बलसे ही हरिजन या हर किसी मनुष्यके लिए अपना धर्मस्थान खुला रखते हैं और सदा ही वह सबके लिए उन्मुक्त-द्वार रहेगा। ऐसी खुली घोषणा करनेके बदले विरोध करना और उलटी सुलटी दलीलोंका वितण्डा खड़ा करना, इससे बढ़कर जैन धर्मकी नामोशी क्या हो सकती है ?

पर इस नामोशीकी परवाह न करनेवाला जो जैन मानस बन गया है उसके पीछे एक इतिहास है। जैन लोग व्यवहार-क्षेत्रमें ब्राह्मण-वर्गके जाति-भेदके सिद्धान्तके सामने सर्वदा झुकते आये हैं। भगवान् महावीरसे ही नहीं, उनसे भी पहलेसे प्रारम्भ हुआ 'जाति-समानता' का सिद्धान्त आज तकके जैन ग्रन्थोंमें एक सरीखा समर्थित हुआ है और शास्त्रोंमें इस सिद्धान्तके समर्थन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करनेमें ब्राह्मण वर्गका कोई प्रभाव स्वीकार नहीं किया गया है। फिर भी उन्हीं शास्त्रोंके लिखनेवाले, बाँचनेवाले और सुननेवाले जैन लोग हरिजनों या दलित लोगोंको धार्मिक क्षेत्रमें भी समानता देनेसे साफ इनकार कर देते हैं, इससे बढ़कर आश्चर्य और दुखकी बात क्या हो सकती है ?

पश्चिमका साम्यवाद हो, समानताके आधारसे रचा हुआ कांग्रेसी कार्यक्रम हो या गाँधीजीका अस्पृश्यता-निवारण हो, ये सब प्रवृत्तियाँ जो दलितोंका उद्धार करती हैं और मानवताके विकासमें आनेवाले रोड़ोंको दूर कर उसके स्थानमें विकासकी अनुकूलताएँ लाती हैं, क्या इनमें जैनधर्मका प्राण नहीं धड़कता ? क्या जैनधर्मके मूलभूत सिद्धान्तकी समझ और रक्षाका भार केवल जैनोंके ऊपर है ? क्या जैनधर्मके सिद्धान्तोंको अंकुरित और विकसित करनेके लिए परम्परासे चला आनेवाला जैनधर्मका ही बाड़ा चाहिए ? यदि नहीं, तो बिना परिश्रम और बिना खर्चके यदि जैनधर्मके सिद्धान्तोंके पुनरुज्जीवनका अवसर आता है, तो ऐसे मौकेपर जैनोंको हरिजन-मन्दिर-प्रवेश बिलको स्वीकार करने और बढ़ावा देनेके बदले उसका विरोध करना, सनातनी वैदिक वर्णाश्रम-संघकी पुष्टि करके प्राचीन जैनधर्म और श्रमणधर्मके विरोधी रुखको प्रोत्साहन देना है। इस दृष्टिसे जो विचार करेंगे, उन्हें यह लगे बिना नहीं रह सकता कि जो काम जैनपरम्पराका था और है और जिस कामको करनेके लिए जैनोंको ही आगे आना चाहिए था, संकट सहना चाहिए था और ब्राह्मणवर्गके वर्चस्वसे पराभूत जैनधर्मके तेजका उद्धार करना चाहिए था, वह सब कार्य मूलभूत सिद्धांतकी शुद्धिके बलसे स्वयमेव हो रहा है, उसमें साथ न देकर विरोध करना पिछली रोटी खाना और कर्त्तव्यभ्रष्ट होना है।

—प्रस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org